प्रवचन-६५, श्लोक-८५, गाथा-६३, रविवार, आषाढ़ शुक्ल ११, दिनांक ०४-०७-१९७१

पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ रागभाव को एकत्वरूप से (अनुभव करता है)। स्वभाव शुद्ध है और विभाव अशुद्ध है, दो का एकपने मानना, वह बन्ध है, वह मिथ्यात्व है, वह अज्ञान है। उससे—राग और विकल्प से मेरी चीज़ शुद्ध चिदानन्द आत्मा भिन्न है—ऐसी जिसने राग से भिन्नता की और अपने स्वभाव की एकता अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति द्वारा साधी है, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। अटपटा जैसा लगे। लोगों को तत्त्व का अभ्यास नहीं होता। शान्तिभाई! आत्मा क्या वस्तु है ? अन्दर क्यों दुःखी है ? बन्ध क्यों है और बन्धरहित कैसे हुआ जाए, यह बात इसने अनन्त काल में बराबर सुनी नहीं, विचार नहीं की। अन्दर में प्रभु आत्मा...

यह अधिकार तो अपने भाषासमिति का चलता है परन्तु मोक्षमार्ग में आत्मा, यह विभाव के विकल्पों की वृत्ति जो पुण्य-पाप और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम से भिन्न अपना जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। उस मोक्षमार्ग को साधनेवाले सन्त होते हैं। उन्हें भाषा समिति होती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। यद्यपि निश्चय से तो वे विकल्परहित ही अपनी शुद्धपरिणति को साधते हैं। वही सच्ची अन्तर शुद्ध स्वभाव की एकता, वह उनकी सच्ची समिति है। समिति—स्वरूप की परिणति शुद्धगति, विकाररहित आत्मा शुद्धचिदानन्द की शुद्ध परमपवित्र परिणति, गति, रमणता ही सच्ची समिति गिनने में आयी है। ऐसा है। इसे भाषासमिति विकल्प होता है, तो बराबर हित-मित बोलना; वीतराग कहते हैं, उस प्रकार से सत्य बात कहना, उसे व्यवहारसमिति, पुण्यबन्ध का कारण है। मनसुखभाई! यह गजब बात है। यह अगम्य बातें हैं। अब यहाँ तो अपने निश्चय का है, देखो! ८५वाँ कलश।

पर-ब्रह्मण्यनुष्ठान-निरतानां मनीषिणाम्।
अन्तरैरप्यलं जल्पैः बहिर्जल्पैश्च किं पुनः।।८५।।

आहाहा! **श्लोकार्थ : परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत...** भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ही शुद्ध आनन्द है। ऐसा जो परमब्रह्म। ब्रह्म क्यों कहा ?—कि परम आनन्दस्वरूप आत्मा

है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु आत्मा है, इसलिए परमब्रह्म, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव में-अनुष्ठान में यह उनका अनुष्ठान। आहाहा! परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा में आचरण करना अर्थात् एकाग्र होना, वह उसका अनुष्ठान, यह धर्मी का आचरण है। आहाहा!

परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत... निरत अर्थात् लीन। आहाहा! अनादि से अज्ञान में अपने निजानन्दस्वरूप के भान बिना, यह पुण्य और पाप के रागभाव, दुःखभाव में यह रत था, लीन था। यह संसार में भटकने का रास्ता है। आहाहा! समझ में आया? यह उसकी लीनता बदलना। परमब्रह्म का अनुष्ठान किया। आहाहा! अनादि से... यह देह तो जड़, मिट्टी, धूल, अजीव है। इसे और आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। दोनों परिणति निराली है। दोनों की दशा ही अलग है। यह (शरीर) तो जड़, मिट्टी, अजीव है। इस अजीव की पर्याय करता हुआ अजीव स्वयं से टिक रहा है।

आत्मा में जो अनादि के पुण्य और पाप के भाव जो विभावभाव, उनमें जो अनादि से रत था, लीन था, वह दुःख के पन्थ में, बन्ध के पन्थ में था। शान्तिभाई! ऐसा स्वरूप है। बहुत सूक्ष्म है। अनजाने को तो अटपटा जैसा लगे। अटपटी भाषा होवे न, ऐसा लगे। वस्तु का कभी परिचय किया नहीं। अन्दर देह में रजकण से, मिट्टी से भिन्न। जिसका चैतन्य का तेज, ज्ञान और आनन्द के तेज से दिप्त, ओपता-शोभता आत्मा है। ऐसे आत्मा को यहाँ परमब्रह्म कहते हैं। परम आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। इन विषयों में, पैसे में, शरीर में, स्त्री के भोग में सुख मानता है, वह तो मूढ़ अज्ञानी कल्पना करके मानता है। उनमें है नहीं। कल्पना करके, मूढ़ अपने आनन्द को भूलकर, उनमें ठीक लगता है, मजा आता है, ऐसा वह मानता है। यह मान्यता मिथ्याभ्रम और दुःखरूप है। उसे टालकर जिसने परमब्रह्म भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के सागर प्रभु का जिसने अनुष्ठान किया, उसके अन्तर के आचरण में जो लीन है। यह क्या कहते हैं?

इसका अनादि का आचरण विकारी, पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि भाव, ये सब विकारी भाव हैं, उनका इसे आचरण था। यह आचरण मिथ्या आचरण, मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-आचरण है। इस आचरण की दृष्टि छोड़कर, जो परमब्रह्म भगवान आत्मा के अनुष्ठान में लीन है। सच्चिदानन्द प्रभु—सत् शाश्वत चिद् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द के अनुष्ठान में लीन है। इनकी भाषा देखो! आहाहा! भगवान

पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, उसके आचरण में-अनुष्ठान में-आचरण में लीन है, यह मुक्ति का मार्ग है। कहो, समझ में आया? शशीभाई! यह शब्द तो बहुत सरस आया है। मांगलिक में पहला ही आया है। लो, तुम्हारे। आहाहा!

कहते हैं, अरे! एक बार सत्य क्या है, तेरा सत्पना, सत्यपना। पुण्य-पाप के भाव, वे तो सब असत्य और दुःखकारी, विकारी हैं। शरीर, मन, वाणी तो सब जड़ और अजीव हैं, वे कोई तुझमें नहीं हैं, तेरे नहीं हैं, तेरे होकर रहे नहीं हैं। वे तो उनके (जड़ के) होकर रहे हैं। तू आनन्द और ज्ञान का, तेज का सागर प्रभु है। उसरूप अनादि से न रहकर, शुभ-अशुभ के विकल्प, पुण्य, पाप के राग के आचरणरूप रहना, वह दुःखदायक आचरण है। समझ में आया? आहाहा! आचरण तो इसकी दशा में होता है न? हैं?

भगवान आत्मा अनादि से विकार के, पुण्य-पाप के भाव के आचरण में है, वह तो बन्धभाव है, दुःखभाव है, संसारभाव है, भटकने का भाव है। दुःख के जाल में उलझने का वह भाव है। जिसे मोक्ष करना हो, उसे भगवान आत्मा परमब्रह्म, परम आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर स्वरूप, ध्रुव अनादि-अनन्त अविनाशी जो चीज़ है, उस परमब्रह्म का अनुष्ठान, यह पर्याय है। परमब्रह्म, यह त्रिकाली आनन्दस्वरूप, वह ध्रुव है... है... और है आत्मा। आदि नहीं, अन्त नहीं; अनादि है, है और है। ऐसा जो अतीन्द्रिय परमब्रह्म आनन्दस्वरूप का अनुष्ठान अर्थात् उसमें एकाग्रता, जिसे मोक्षमार्ग कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह परमब्रह्म का अनुष्ठान है। समझ में आया? आहाहा! बात सुनने पर बैठना कठिन पड़ती है। अरे! सम्प्रदाय में यह बात नहीं चलती।

यह बात ही दूसरी है, भगवान! बात ही बापू! अपूर्व बात अनन्त काल में जिसे सुनी नहीं, ग्रहण नहीं की, रुचि नहीं, परिणमी नहीं। वह चीज तो कैसी होगी? भाषा ही पहले ऐसी ली है। देखो न! भाषासमिति का कहते हैं। यह भाषा बोलना, वह नहीं, कहते हैं। आहाहा! यह व्यवहारसमिति का विकल्प, वह तो व्यवहार आचरण है परन्तु जिसे ऐसा निश्चय आचरण होवे, उसे होता है परन्तु यह व्यवहार आचरण का भी विकल्प है, उसे छोड़कर, भगवान परमानन्द प्रभु ध्रुव अविनाशी अनादि-अनन्त सत् आत्मा का जो आनन्दस्वरूप ध्रुव में एकाग्र होना, वह परमब्रह्म का अनुष्ठान है, वह आत्मा का अनुष्ठान है, वह आत्मा का आचरण है, वह आत्मा की मोक्षमार्ग की दशा है। समझ में आया?

ऐसे धर्मात्मा ने **निरत (अर्थात्, परमात्मा के आचरण में लीन) ऐसे बुद्धिमान्**

पुरुषों को... देखो! उन्हें चतुर कहा। ये दुनिया के चतुर, वे चतुर नहीं। महीने में पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार का वेतन, वे चतुर होंगे या नहीं? इन रामजीभाई के लड़के को पढ़ाकर कितना बड़ा किया है, सुमनभाई (को)। आठ हजार का वेतन, ऐसा लोग कहते हैं। अपने को कुछ खबर नहीं। ऐसा लोग कहते हैं कि इनके लड़के का आठ हजार का मासिक वेतन है। नौ हजार है। लो, उसके पिता को खबर नहीं।

मुमुक्षु : मुझे खबर नहीं और सरकार का कानून हुआ है कि पाँच हजार से अधिक किसी को नहीं दिया जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुप्त होगा। आहाहा!

कहते हैं कि यह चतुराई नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो भटकने की चतुराई है। आहाहा! देखो न! यह क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति, प्रभु! वस्तु हो, वह दुःखरूप होगी? दुःख तो उससे उल्टी विकृत दशा करे, वह दुःख है। दुःख नहीं शरीर, वाणी, मन में; दुःख नहीं अन्तरस्वरूप में। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान को भूलकर पुण्य और पाप के भाव में रुकता है, वह दुःख है। समझ में आया? आहाहा! वह रुचि छोड़कर जिसे परमब्रह्म भगवान आनन्दमूर्ति, प्रभु, इन आस्रव के राग से निराला; पुण्य-पाप के विकल्प, वह तो बन्धन के कारण, आस्रव, विकार है। उनसे निराला ध्रुवतत्त्व है। उसके अनुष्ठान में एक स्वभाव में स्वाश्रय में लीन है, उन चतुर पुरुषों को... उन्हें चतुर पुरुष कहा। बाकी सब पागल और मूर्ख हैं। महीने में दस-दस हजार का वेतन हो। समझ में आया? आहाहा!

अरे! प्रभु अपना स्वरूप आनन्द का धाम, मृग की नाभि में कस्तूरी है, कस्तूरी की मृग को कीमत नहीं होती। इसी प्रकार अन्तर आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी भरी है, उसकी उसे कीमत नहीं है। पुण्य और पाप अथवा पुण्य का फल यह कुछ धूल मिली हो, पैसा पाँच-पचास लाख, स्त्री, पुत्र कुछ रूपवान और अच्छे (हुए हों), यह उसकी-धूल की लक्ष्मी। आहाहा! उसकी इसे महिमा है, यह मूढ़ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐई! मलूपचन्दभाई! आहाहा! न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं? 'नि' धातु है न? वस्तु का स्वरूप जैसा है, उसे नि धातु, ले जाना। जैसा है, उसे ज्ञान में ले जाना, इसका नाम न्याय कहा जाता है। आहाहा!

भगवान ने... श्लोक रखा है न! टीका का, स्वयं का नहीं? टीकाकार का अपना। अरे! जिसका आचरण विकार का आचरण जो पर की ओर के आश्रयवाले, ऐसी आश्रयदृष्टि जिसे पर की छूट गयी है और स्व भगवान नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे अनुष्ठान-लीनता है... आहाहा! **ऐसे बुद्धिमान् पुरुषों को अर्थात् मुनिजनों को...** ऐसे धर्मात्मा को... आहाहा! **अन्तर्जल्प से (विकल्परूप अन्तरंग उत्थान से)...** अन्दर विकल्पवृत्ति उठती है न? मैं ऐसा हूँ, या वैसा हूँ। ऐसा विकल्प उठे, वह अन्तर्जल्प है, विकार है, कहते हैं। उससे धर्मात्मा को क्या प्रयोजन है? कहते हैं। आहाहा! देखो! यह मुनि की दशा। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में लीन है, ऐसी दशा जिसे है, उस धर्मात्मा को अन्तर्जल्प, अन्तर्मुख की वृत्ति का उत्थान, विकल्प उठना, उसका क्या प्रयोजन है? वह तो राग, विकार है।

उस उत्थान से **भी बस होओ,...** क्या कहते हैं? अन्तर्जल्प से भी बस होओ। अर्थात् क्या? बाहर से तो बोलना बन्द है। उससे तो क्या कहना? ऐसा कहते हैं। भाषा बोलना, वह तो जड़ अवस्था है, परन्तु उसमें विकल्प उठता है कि ऐसे बोलना, वह राग है। आहाहा! कहते हैं कि धर्मात्मा मुनि सन्त जंगल में बसते हों, उनकी बात है न? उन्हें, जिनके आनन्द में, अनुभव में लीन है, ऐसे सन्तों को अन्तरवृत्ति का क्या काम है, कहते हैं। अन्तर्जल्प उठे, ऐसा कहूँ, ऐसा बोलना, ऐसी बात ऐसी वृत्ति से बस होओ। है न? **अन्तरैरप्यलं जल्पैः... अन्तरैरप्यलं जल्पैः** अलम् बस होओ। यह अन्दर में राग की वृत्ति का विकल्प उठता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही वापस ऐसा कहते हैं, शास्त्र में बहुत ऊँची बात आयी है, उत्कृष्ट। इसलिए हमारा आचरण जघन्य-मध्यम है। परन्तु अब यह तो मूल चीज़ ही यह है। आहाहा! अभी आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प नहीं हैं और अजीव तो मिट्टी-जड़ है, वह तो इसमें है ही नहीं। इतना भी जिसे अभी भान नहीं, उसे सम्यग्दर्शन बिना स्वरूप में लीनता की चारित्र की दशा नहीं हो सकती। समझ में आया? वह चौरासी के अवतार में लुटाया है, कहते हैं। भाई! तेरी निधि। तेरा निधान सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पड़ा रहा है। उसके सामने देखे बिना, शत्रु के सामने देखकर तूने शत्रु को प्रिय किया है। आहाहा! यह शुभ और अशुभ का राग, वह शत्रु है, उसे तूने प्रिय किया, भगवान! अब छोड़ न, कहते हैं। आहाहा! पहले दृष्टि तो निर्मल कर कि यह पुण्य और पाप का राग, वह

विभाव अधर्म है। मेरी चीज़ उससे भिन्न है। ऐसा आनन्दमूर्ति का अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली शुरुआत की दशा कहने में आती है।

तदुपरान्त यहाँ तो अब मुनि की दशा का वर्णन है। मुनि तो स्वरूप में इतने अधिक लीन होते हैं कि जिन्हें अन्तर्जल्प के विकल्प से अलम्—बस होओ। बस होओ... बस होओ... समझाना है न? बस होओ, ऐसा कहते हैं, वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? **मुनिजनों को अन्तर्जल्प से (विकल्परूप अन्तरंग उत्थान से)...** अन्दर वृत्ति उठे, वह उत्थान हुआ न? विकल्प उठे, राग, यह हूँ, वह हूँ, यह नहीं, वह नहीं, सब अन्तर में मन का विकल्प, हों! वह दुःखरूप है। बन्द करो। भगवान! अब तेरे घर में जा – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और बहिर्जल्प। **बहिर्जल्प की (भाषा बोलने की) तो बात ही क्या?** कहते हैं। बोलना, ऐसा जो विकल्प उठे, बोलने का, वह तो मुनि को क्या काम है? आहाहा! समाधिशतक में लिया है न? किसके साथ बोलना? यह दिखता है, वह जड़ है। अन्दर आत्मा, वह तो रागरहित भिन्न चीज़ है। मैं किसके साथ बोलूँ? वह सुनता नहीं और इस जड़ को भान नहीं। चैतन्य है, वह तो जाननहार-देखनहार प्रभु है। मौन रहने की बात में आता है न? समाधिशतक में आता है। मैं किसके साथ बोलूँ? मेरा स्वभाव ही अन्तर में... अन्तर विकल्प उत्थान करना, वह भी मेरा स्वरूप नहीं, तो बोलना और बोल करके करना, यह मैं किसे कहूँ? क्या कहूँ? समझ में आया? **बहिर्जल्प की तो बात ही क्या?** यह व्यवहारसमिति की व्याख्या। वापस उड़ा दी। टीकाकार ने उड़ा दी। इसलिए लोगों को यह टीका कठोर पड़ती है न। लो, यह भाषासमिति की बात हुई।

अब मुनि की ऐषणासमिति। मुनि आत्मा के आनन्द में रमनेवाले होते हैं। उन्हें निर्दोष आहार होता है। उनके लिए बनाया आहार चौका करके ले, वह आहार नहीं होता। नहीं होता? तुम्हारे करते हैं न? आहाहा! मुनि की दशा... लोग कहते हैं कि तुम मुनि को मानो, परन्तु मुनि आगम से तो देख। आगम की दृष्टि से मुनि किसे कहना, इसकी खबर बिना मुनि किसे मानना? ऐई! ऐषणासमिति कहते हैं। पहले ईर्यासमिति की बात आ गयी, पंच महाव्रत की बात आ गयी। पश्चात् ईर्या की, भाषा की (बात हुई)। अब ऐषणासमिति। ६३ वीं गाथा।

गाथा-६३

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं सम-भुत्ती एसणा-समिदी।।६३।।

कृतकारितानुमोदनरहितं तथा प्रासुकं प्रशस्तं च।
दत्तं परेण भक्तं सम्भुक्तिः एषणा-समितिः।।६३।।

अत्रैषणासमितिस्वरूपमुक्तम्। तद्यथा ह्न मनोवाक्कायानां प्रत्येकं कृतकारितानुमोदनैः कृत्वा नव विकल्पा भवन्ति, न तैः संयुक्तमन्नं नवकोटिविशुद्धमित्युक्तं; अतिप्रशस्तं मनोहरं, हरितकायात्मकसूक्ष्मप्राणिसञ्चारागोचरं प्रासुकमित्यभिहितं; प्रतिग्रहोच्चस्थानपाद-क्षालनार्चनप्रणामयोगशुद्धिभिक्षाशुद्धिनामधेयैर्नवविधपुण्यैः प्रतिपत्तिं कृत्वा श्रद्धाशक्त्य-लुब्धताभक्तिज्ञानदयाक्षमाऽभिधानसप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन योग्याचारेणोपासकेन दत्तं भक्तं भुञ्जानः तिष्ठति यः परमतपोधनः तस्यैषणासमितिर्भवति। इति व्यवहारसमितिक्रमः। अथ निश्चयतो जीवस्याशनं नास्ति परमार्थतः, षट्प्रकारमशनं व्यवहारतः सन्सारिणामेव भवति।

तथा चोक्तं ह्न

णोकम्मकम्महारो लेपाहारो य कवलमाहारो।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

अशुद्धजीवानां विभावधर्मं प्रति व्यवहारनयस्योदाहरणमिदम्। इदानीं निश्चयस्योदाहृति-रुच्यते। तद्यथा ह्न

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।
अण्णं भिक्ख-मणेसणमध ते समणा अणाहारा।।

तथा चोक्तं श्रीगुणभद्रस्वामिभिः ह्न

(मालिनी)

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।

विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ।।

तथाहि ह्न

आहार प्रासुक शुद्ध लें परदत्त कृत कारित बिना।
करते नहिं अनुमोदना मुनि, समिति जिनके एषणा ॥६३॥

अन्वयार्थ :—[परेण दत्तं] पर द्वारा दिया गया, [कृतकारितानुमोदनरहितं] कृत-कारित-अनुमोदनरहित, [तथा प्रासुकं] प्रासुक [प्रशस्तं च] और प्रशस्त[१] [भक्तं] भोजन करनेरूप [संभुक्तिः] जो सम्यक् आहारग्रहण, [एषणासमितिः] वह एषणासमिति है।

टीका :—यहाँ एषणासमिति का स्वरूप कहा है, वह इस प्रकार है —

मन, वचन और काय में से प्रत्येक को कृत, कारित और अनुमोदनासहित मानकर उनके नौ भेद होते हैं; उनसे संयुक्त अन्न नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है – ऐसा (शास्त्र में) कहा है; अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न); हरितकायमय सूक्ष्म प्राणियों के सञ्चार को अगोचर वह प्रासुक (अन्न) – ऐसा (शास्त्र में) कहा है। प्रतिग्रह[२] उच्च स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि – इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके, श्रद्धा, शक्ति, अलुब्धता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा – इन (दाता के) सात गुणोंसहित शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक द्वारा दिया गया (नव कोटिरूप से शुद्ध, प्रशस्त और प्रासुक) भोजन जो परम तपोधन लेते हैं, उन्हें एषणासमिति होती है। ऐसा व्यवहारसमिति क्रम है।

अब, निश्चय से ऐसा है कि जीव को परमार्थ से अशन नहीं है; छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है।

१- प्रशस्त = अच्छा; शास्त्र में प्रशंसित; जो व्यवहार से प्रमादादि का या रोगादि का निमित्त न हो ऐसा।

२- प्रतिग्रह = ''आहारजल शुद्ध है; तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, (ठहरिये, ठहरिये, ठहरिये)'' ऐसा कहकर आहारग्रहण की प्रार्थना करना; कृपा करने के लिये प्रार्थना; आदरसन्मान। [इस प्रकार प्रतिग्रह किया जाने पर, यदि मुनि कृपा करके ठहर जाएँ तो दाता के सात गुणों से युक्त श्रावक उन्हें अपने घर में ले जाकर, उच्च-आसन पर विराजमान करके, पाँव धोकर, पूजन करता है और प्रणाम करता है, फिर मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक शुद्ध भिक्षा देता है।]

नोकर्म-आहार, कर्म-आहार, लेप-आहार, कवल-आहार, ओज-आहार और मन-आहार – ऐसा क्रमशः छह प्रकार आहार जानना।

अशुद्ध जीवों के विभावधर्म सम्बन्ध में व्यवहारनय का यह (अवतरण की हुई गाथा में) उदाहरण है।

अब, (श्री प्रवचनसार की २२७ वीं गाथा द्वारा) निश्चय का उदाहरण कहा जाता है। वह इस प्रकार —

जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है), उसे वह भी तप है; (और) उसे प्राप्त करने के लिये (अनशनस्वभावी आत्मा को परिपूर्णरूप से प्राप्त करने के लिये) प्रयत्न करनेवाले ऐसे जो श्रमण, उन्हें अन्य (स्वरूप से भिन्न ऐसी) भिक्षा, एषणा बिना (एषणादोष रहित) होती है; इसलिए वे श्रमण अनाहारी हैं।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

नियम और यम में तत्पर जो देहादिक से चित्त निवृत।
सब जीवों में अनुकम्पायुत और समाधिदशा को प्राप्त॥
आगमोक्त आहार अल्प है, निद्रा को है किया परास्त।
पाया है अध्यात्म सार दहते क्लेशों का जाल समस्त॥

[श्लोकार्थ :—] जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है; जो अत्यन्त यमनियमसहित है; जिसका आत्मा, बाहर से और भीतर से शान्त हुआ है; जिसे समाधि परिणमित हुई है; जिसे सर्व जीवों के प्रति अनुकम्पा है; जो विहित (शास्त्राज्ञा के अनुसार) हित-मित[१] भोजन करनेवाला है; जिसे निद्रा का नाश किया है, वह (मुनि) क्लेशजाल को समूल जला देता है।

गाथा-६३ पर प्रवचन

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं सम-भुत्ती एसणा-समिदी।।६३।।

नीचे हरिगीत। मूल श्लोक का नीचे हरिगीत।

आहार प्रासुक शुद्ध लें परदत्त कृत कारित बिना।
करते नहिं अनुमोदना मुनि, समिति जिनके एषणा॥६३॥

एषणासमिति। एषणा अर्थात् क्या? शोधना। मेरे लिए बनाया हुआ नहीं न? मुनि के लिए किया, कराया और अनुमोदन, वह कोई भी आहार नहीं लेते। मुनिदशा है। नीचे है, देखो। **मन, वचन और काय में से प्रत्येक को कृत, कारित और अनुमोदनासहित मानकर उनके नौ भेद होते हैं;...** मन, वचन और काया। मन, वचन, काया से करना, कराना और अनुमोदना, इसके नौ भेद होते हैं। नौ भेद से उन्हें आहार का त्याग होता है। मन से किया हुआ, कराया हुआ और अनुमोदना तथा वचन से और काया से (कृत-कारित अनुमोदना, ऐसे) नौ भेद से सदोष आहार का त्याग होता है। समझ में आया? **उनसे संयुक्त अन्न नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है...** देखो! जिसमें उनके लिए किया हो, कराया हो और करता को ले। वह ले, वही अनुमोदना है, भाई! खबर है कि यह मेरे लिए बनाया है। यह पानी (प्रासुक) बनाया है। पानी कहाँ वहाँ पाँच-दस सेर था? गर्म पानी कर रखा था। समझ में आया? वह लेते हैं, वही पाप का अनुमोदन करते हैं।

मुमुक्षु : लल्लूभाई के भाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लल्लूभाई। यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९६९ के वर्ष में उठा था। दीक्षा लेने से पहले। १९७० के वर्ष में दीक्षा ली। ५८वाँ वर्ष चलता है? संवत् १९६९ के वर्ष में यह प्रश्न उठा था। हीराजी महाराज के साथ। हीराजी महाराज को तुमने नहीं देखा होगा। तुमने देखा है? नहीं देखा होगा। १९७४ के वर्ष में गुजर गये। उनसे मैंने पहला प्रश्न किया था। संवत् १९६९ के वर्ष में-वैशाख में। संवत् १९६९, राणपुर में प्रश्न किया था। कहा, महाराज!... अभी दीक्षा नहीं ली थी, परन्तु सब निर्णय करता था। (तो प्रश्न किया) कि महाराज! यह साधु के लिए मकान बनाया हो। यह उपाश्रय बनाते हैं न? तो कहा, उसे नो कोटि में से कौन सी कोटि टूटती है? ऐसा मैंने प्रश्न किया था। नौ कोटि समझ में आयी? मन, वचन और काया, करना, कराना, और अनुमोदन करना। नौ आये न नौ? यह तो तब प्रश्न हुआ था। संवत् १९६९। १९६९ के वर्ष, ५८ वर्ष पहले, राणपुर में प्रश्न किया था। कहा, यह साधु के लिए उपाश्रय-कमरा, उपाश्रय पाटू बनावे। क्योंकि आहार तो वे

नहीं लेते थे। बहुत कड़क। हीराजी महाराज बहुत स्पष्ट थे। उनके लिए आहार किया हो, कराया हो, वह लेते ही नहीं। अभी तो यह कुछ ठिकाना नहीं है। अभी तो चाय-पानी बनावे, दूध बनावे, दूसरा बनावे। ले जाते हैं। वह तो एकदम मार्ग ही नहीं है। वे तो बहुत निर्दोष लेते थे परन्तु उपाश्रय सेवन करते थे। उसके लिए करे, ये प्रश्न उठा था। एक गुलाबचन्द गाँधी थे। नाम नहीं सुना होगा। राजकोट के साधु गुलाबचन्द गाँधी, वह क्या कहलाता है तुम्हारा? जरीफ था। गाँधी गुलाबचन्द। यह १९६९ के वर्ष में भाद्र शुक्ल चार के दिन राजकोट में गुजर गये। परन्तु वे उपाश्रय नहीं प्रयोग करते थे। उनके लिए बनाया हुआ उपाश्रय, मकान, कमरा, पाट वे नहीं प्रयोग करते थे। १९६८ के वर्ष में मैंने उनसे पहले सुना कि साधु को नहीं चलता। कहा, अपने को तो यह खबर नहीं थी। साधु को उसके लिए बनाया हुआ पाट (पटिया) नहीं चलता। ठीक। करो अपने निर्णय, हीराजी महाराज को पूछकर और उन्होंने गाथा कही। तब कण्ठस्थ थी। इसलिए उस दिन दशवैकालिक की गाथा थी। अठारह बोल में एक भी बोल तोड़े तो साधुपने से भ्रष्ट होता है, तो वहाँ उसमें ऐसा था कि उसके लिए मकान, उपाश्रय, पाट बनाया हुआ हो, यदि ले तो वह साधुपने से भ्रष्ट होता है। ऐसा उस श्लोक में था। वह श्लोक तब कण्ठस्थ था। १९६९ के वर्ष की बात है। और मैंने उसे कहा बात सच्ची लगती है, हों! तुमने कहा यह। ऐई! दास! तुमने देखा है न? वढ़वाण के चातुरमास में। १९६९ में वहाँ था। १९७० के वर्ष में राजकोट। कहा, यह क्या? हीराजी महाराज को कहा, हमारे गुरु थे, बहुत शान्त थे परन्तु अब यह बात... उनके निकट दीक्षा लेता है, यह और वह यह पूछता है। मैं कहूँ नहीं। वह नहीं बेचारे को। मैं कहूँगा तो रुकेगा, ऐसा कुछ नहीं है। उनने ऐसा माना था कि मुझे कहे। मैंने कहा, महाराज! मेरा एक प्रश्न है कि यह साधु के लिए मकान, उपाश्रय या पाट बनाया हो, आहार-पानी वहाँ ले तो उसे मन, वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन— नौ कोटि आयी न यहाँ? उनमें से कौन सी कोटि टूटती है, कहो। तो नव टूटती है? इसलिए ऐसा बोले कि उसमें एक भी नहीं टूटती। उनके सामने तो कुछ बोला नहीं जाए। मन में हो गया कि यह बात अपने को जँचती नहीं है। बहुत इज्जतदार थे। हीराजी महाराज तो बहुत इज्जतदार। बहुत 'हीरा इतना हीर' ऐसी उनके आचरण की क्रिया, परन्तु दृष्टि अत्यन्त मिथ्या, परन्तु उनका सम्प्रदाय के आचरण में... फिर दृष्टान्त दिया कि तुम्हारे भाई

खुशालभाई हैं... मुझे दृष्टान्त दिया। उन्होंने एक मकान बनाया, और उसमें तुम रहो, उसमें कौन सी कोटि टूटेगी ? मेरे मन में तो ऐसा कि वह प्रयोग करे, वही अनुमोदन है। नौ कोटि में यह अनुमोदन हुआ, वह कोटि ही टूट गयी। ऐई! तुम्हारे गुलाबचन्दजी का था न ? आहाहा! यह तो १९६९ के वर्ष की बात हे। ५९ वर्ष पहले की बात है। कितनों का तो जन्म भी नहीं होगा ? अपने को जँचता नहीं, भाई! क्योंकि दशवैकालिक कण्ठस्थ था, उसमें एक गाथा थी कि जो कोई उसके लिए बनाया हुआ हो, वह अनुमोदना करता है, तो उसे नौ कोटि निर्दोष नहीं रहती। वह साधु नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

नौ भेद—करना, कराना, अनुमोदन; मन से, वचन से और काया से। **उनसे संयुक्त अन्न...** ऐसे नव भंग से दोषवाला अन्न। **नव कोटिरूप से विशुद्ध नहीं है...** वह नौ प्रकार से निर्दोष नहीं है। **ऐसा (शास्त्र में) कहा है;...** इसलिए ऐसा आहार-पानी, मकान साधु नहीं लेते। आहाहा! यहाँ तो अब दो-दो लाख के, पाँच-पाँच लाख के मकान बनावे और सामने खड़े रहें। आहाहा! सब... गृहस्थों को खबर नहीं होती। **अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न);...** चाहिए, ऐसा कहते हैं। एक तो निर्दोष चाहिए और अतिप्रशस्त अर्थात् **प्रमादादि का या रोगादि का निमित्त न हो ऐसा।** रोग का कारण न हो, प्रमाद ऐसा... गरिष्ट आहार मैसूर (पाक) आदि कि जिसमें प्रमाद हो, ऐसा आहार नहीं लेना चाहिए। निभाने के लिए, शरीर निभानेमात्र विकल्प होता है।

मनोहर... अर्थात् **अतिप्रशस्त; अर्थात्, मनोहर (अन्न);...** शरीर में रोग और प्रमाद का कारण न हो, ऐसा निर्दोष। उसके लिए बनाया हुआ, बिल्कुल किया हुआ, कराया हुआ, अनुमोदन नहीं। **हरितकायमय सूक्ष्म प्राणियों के सञ्चार को अगोचर...** जिसमें हरितकाय का जीव हरितकाय, एकेन्द्रिय का एक दाना भी उसमें छुआ हुआ न हो। ये वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है न ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आता है न ? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया - यह आता है न, इच्छामि पडिक्कमण में। सामायिक में इर्या, ववरोविया यह आता है न ? अर्थ की किसे खबर होती है! भगवान जाने। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया,... जीवियाओ, ववरोविया... मिच्छामी दुक्कडम् जाओ। ऐई! जयन्तीभाई! किया है या नहीं कुछ ? सामायिक-वामायिक की है या नहीं ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिसमें हरितकाय का एक दाना सचेत, जो अनाज को छुआ न हो, ऐसा अनाज प्रासुक गिनने में आता है। ऐसा प्रासुक मुनि लेते हैं। यदि एक दाना भी बाजरे का, गेहूँ का दाना पड़ा हो और निर्दोष आहार देने के लिए बहिन उठे, यदि उसकी साड़ी या पैर दाने को छू जाए तो मुनि आहार नहीं लेते। ऐसा हमने सम्प्रदाय में बहुत वर्ष किया है। चिल्लाते थे। समझ में आया? यह सब क्रियाकाण्ड, तत्त्वदृष्टिरहित। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित मुनिपने की दशा की बात है। उसे जानना पड़ेगा या नहीं कि मुनिपना कैसा होता है? अभी मुनिपना, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की खबर न हो और ऐसे समकित कहाँ से हो?

वह प्रासुक (अन्न) – ऐसा (शास्त्र में) कहा है। लो, जिसे एक दाना भी स्पर्शित न हो। वनस्पति शब्द प्रयोग किया है न? देखो न! हरितकाय सूक्ष्म। सूक्ष्म टुकड़ा। एक यह ग्वार आती है न? ग्वार नहीं? उसे काटे और बारीक सूक्ष्म टुकड़ा होता है न? जरा ऐसे पड़ा हो तो भी उसे आहार छूना नहीं चाहिए। वह छुआ हुआ आहार चलता नहीं है। यह ग्वार... ग्वार। अन्तिम क्या कहलाती है अणी। ग्वार की सब्जी बनावे, तब उसकी अन्तिम अणी गँठल निकाल डालते हैं। वह यदि यहाँ पड़ी हो और उसमें आहार देनेवाले का पैर पड़े तो वह साधु को चलता नहीं। वह हरितकाय संचारवाला आहार है। अरे रे! ऐसा शास्त्र में भगवान ने कहा है।

मुमुक्षु : वह टुकड़ा-गँठल तो अजीव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव होगा? जीव है। इतनी भी खबर नहीं? यह हरा ग्वार होता है न, उसके टुकड़े में असंख्य हरे जीव हैं। हरितकाय लीलोतरी है। यह हरितकाय कहा नहीं? एक टुकड़ा इतना हरा, यह भिण्डी लो न! उसकी भी अन्तिम अणी निकाल डालते हैं न? उस अणी में असंख्य जीव हैं। भगवान केवली ने कहे हुए एकेन्द्रिय जीव हैं। जैन में रहे, उन्हें भी कहाँ खबर है। जय नारायण। भगवान सच्चे। करो धर्म। क्यों? कान्तिभाई!

यहाँ तो कहते हैं कि उस हरितकाय का एक टुकड़ा.. भिण्डी का, ग्वार का.. हमारे हीराजी महाराज की क्रिया बहुत ऐसी। हमारी क्रिया भी पन्द्रह वर्ष बहुत कड़क थी। आहार लेने जाएँ और इस हरितकाय का टुकड़ा पड़ा हो, और उस महिला का पैर छू जाए तो आहार न लें। अपने गृहस्थ रायचन्द गाँधी जैसे बड़े दशाश्रीमाली हैं न? रायचन्द गाँधी

बोटाद में बड़े गृहस्थ है, उनके यहाँ आहार लेने जाएँ, वहाँ बड़ा मकान। एक टुकड़ा ऐसे पड़ा हो, उसे छूए, वहाँ ध्यान रखना, महाराज आये हैं, ऐसा कहे। यदि कहीं छू जाओगे तो नहीं लेंगे, चिल्लाहट करे, हों! रायचन्द गाँधी... ८५ वर्ष की उम्र, ९० हुए होंगे। वह बेचारे उसे देखकर डरे। हम आहार लेने जाएँ वहाँ। यह क्रिया उस समय सख्त मानी थी, वह की थी। डरे, ऐसे डरे। कहाँ वस्तु... होगी। कहीं हरितकाय को छू जाएँगे तो महाराज चले जाएँगे।

यहाँ मुनि सच्चे सन्त आत्मज्ञानसहित, जिन्हें आत्मा के आनन्द का अनुष्ठान प्रगट हुआ है, उन्हें आहार की विधि में इस प्रकार से होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! एक बात।

अब देनेवाला। अब उसे देनेवाला कैसा हो? आहार ऐसा हो, लेनेवाले ऐसे हों, दो बात हो गयी न? अब देनेवाला कैसा हो? आहाहा! **प्रतिग्रह, उच्च स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि - इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके,...** लो। वही गृहस्थ ऐसा कहे, आहार -पानी शुद्ध है। बात सूक्ष्म है। सच्चे सन्त की बात है। सच्चे मुनि हों, वे तो नग्न होते हैं, दिगम्बर होते हैं, जंगल में बसते हैं।

जैन परमेश्वर ने स्वीकार किये हुए सन्त, मुनि... णमो लोए सव्व साहूणं—यह पद तो शरीर में नग्न हो; अन्दर तीन कषायरहित हो, वह जंगल में बसता है। भिक्षा के लिए किसी समय गाँव में आवे। ऐसी स्थिति वीतराग के मार्ग में अनादि की है। बीच में गड़बड़ की है, वह उसके घर की। भगवान के घर की नहीं। आहार-पानी शुद्ध है, ऐसा पहले कहे। मुनि निकले, दिगम्बर सन्त, आत्मध्यानी-ज्ञानी, उसमें आहार का विकल्प होता है। उसमें गृहस्थ... निर्दोष आहार-पानी पड़ा हो वह, हों! उनके लिए बनाया हो (वह नहीं), यह बात तो की है। निर्दोष हो। तथा पाँच-दस हो और एक-दो लोगों को हो इतना तो पहले रखते थे। पहले कहाँ रोटी की बहुत कीमत नहीं थी। अब यह बहुत कीमत हो गयी। पहले तो दो-तीन रुपये का महीने में खाते थे। विधवा को पाँच सौ रुपये आवे और ढाई बाँध दे तो बहुत होता था। साठ वर्ष पहले सुना था। क्या कहलाता है वह? पोत.. पोत। पोत कहते थे या नहीं? सब देखा है न? साठ वर्ष पहले। पाँच सौ रुपये हों। कहे, ओहो.. बहुत।

उसके ढाई रुपये... तब आठ आना नहीं था न, अब यह डेढ़ रुपया हुआ। तब आठ आना ब्याज था। ढाई रुपये बस है, उसे। स्पष्ट लेते थे।

यहाँ कहते हैं कि एकदम घर का आहार हो, उसमें मुनि आये हों। पधारो महाराज, कृपा करो। ऐसा कहे तो वे खड़े रहें। ऐसे के ऐसे घर में नहीं घुस जाएँ, ऐसा कहते हैं। दुनिया में सब फेरफार-फेरफार है। **उच्च स्थान,...** है न? **ऐसा कहकर आहारग्रहण की प्रार्थना करना; कृपा करने के लिये प्रार्थना;...** प्रभु पधारो! **आदरसन्मान। [इस प्रकार प्रतिग्रह किया जाने पर, यदि मुनि कृपा करके ठहर जाएँ तो दाता के सात गुणों से युक्त श्रावक उन्हें अपने घर में ले जाकर, उच्च-आसन पर विराजमान करके,...]** पटिया-वटिया रखकर। **[पाँव धोकर, पूजन करता है...]** ऐसी वीतरागमार्ग में अनादि की विधि है। उसके बाद यह सब फेरफार हो गया है। यह मार्ग अनादि का है। महाविदेहक्षेत्र में तो यही मार्ग वर्तता है। भगवान सीमन्धर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वहाँ ऐसा ही मार्ग है। समझ में आया? अरे रे!

[पाँव धोकर, पूजन करता है और प्रणाम करता है, फिर मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक शुद्ध भिक्षा देता है।] है न? **अर्चन, प्रणाम, योगशुद्धि (मन-वचन-काया की शुद्धि) और भिक्षाशुद्धि - इस नवविध पुण्य से (नवधा भक्ति से) आदर करके,...** देनेवाला कैसा होगा? श्रद्धावाला हो, उसके घर में आहार लेते हैं, ऐसा कहते हैं। जिस-तिस के घर में नहीं चढ़ जाते। अरे रे! गजब बात! यह बात तो सुनना कठिन पड़ती है। यह तो अनादि का यह मार्ग था, मार्ग यह है। समझ में आया?

शक्ति,... अपनी खड़े रहने की शक्ति हो। मूढ़ हो ऐसा नहीं। **अलुब्धता,...** देनेवाले को गृद्धि न हो। ऐसा आहार-पानी दे सकता है। लेनेवाला ऐसा धर्मी हो, धर्मात्मा सन्त नग्न मुनि, स्वरूप के अनुष्ठान में लीनवाला हो, थोड़ा विकल्प है लेने आवें तब। **भक्ति...** सहित दे। **ज्ञान...** सहित हो और भानवाला हो। देनेवाले को भान हो। मुनिपना ऐसा हो, उसे देने की विधि ऐसी हो। ऐसा उसे ज्ञान हो। भानरहित अन्ध न हो। उसके हृदय में दया हो। श्रावक को, सच्चे श्रावक की बात चलती है, हों! यह वाड़ा की बात नहीं है। **दया और क्षमा - इन (दाता के) सात गुणों...** लो। देनेवाले के सात गुण होते हैं। आहाहा! **सहित शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक द्वारा दिया गया...** लो। शुद्ध योग्य आचारवाले उपासक

द्वारा। देखा न? श्रावक स्वयं ऐसा होता है - ऐसा कहते हैं। ऐसे गुणवाले **शुद्ध योग्य-आचारवाले उपासक...** श्रावक, उसके **द्वारा दिया गया (नव कोटिरूप से शुद्ध, प्रशस्त और प्रासुक)...** यह सब आ गया न? तीन बोल आ गये। नव कोटि से शुद्ध **प्रशस्त...** अर्थात् प्रमाद और रोग न हो, ऐसा आहार और **प्रासुक...** अर्थात् उसमें हरितकाय का संचार, एकेन्द्रिय जीव उसे स्पर्श न हुआ हो, ऐसा **भोजन जो परम तपोधन लेते हैं,** लो! **उन्हें एषणासमिति होती है। ऐसा व्यवहारसमिति क्रम है।** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव परमेश्वर तीर्थंकर के मार्ग में यह विधि है। इसमें है या नहीं?

अब, निश्चय से ऐसा है कि जीव को परमार्थ से अशन नहीं है;... यह तो मुनि को शरीर निभाने के लिए जरा विकल्प आया, तो यह होता है। परन्तु वास्तव में तो आहार-पानी तो जड़ है। आत्मा में है ही नहीं और आत्मा में वे स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! वह तो मिट्टी है। दाल, भात, सब्जी, वह तो अजीवतत्त्व है। वह जीवतत्त्व में है ही नहीं। आहाहा! **परमार्थ से अशन नहीं है; छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है।** विकल्प है, इसलिए कहा जाता है। बहुत प्रकार निकलते हैं। समयसार में कहा है या प्रवचनसार में। समयसार में गाथा नहीं आती। ४१५ गाथा है न? टीका में है। **नोकर्म-आहार, कर्म-आहार, लेप-आहार, कवल-आहार, ओज-आहार और मन-आहार...** और इस गाथा का... सरीखा नहीं है प्रवचनसार में। इस गाथा के जो शब्द हैं, ऐसे शब्द उसमें नहीं हैं। प्रवचनसार में थोड़ा अन्तर है। २०वीं गाथा में है न यह? २०वीं गाथा।

णोकम्मकम्महारो लेपाहारो य कवलमाहारो।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

कम्महारो लेपाहारो इतना अन्तर है इसमें है। **णोकम्मकम्महारो लेपाहारो** मुनिपना कैसा होता है, उसका ज्ञान, श्रद्धा कराते हैं। जिसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भी खबर न हो, उसे आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! छह प्रकार के नाम लिए हैं, देखो! **नोकर्म-आहार,...** नोकर्म अर्थात्? शरीर के ये परमाणु हैं न वे? औदारिक के रजकण होते हैं न? वह नोकर्म। केवली को भी वे रजकण आते हैं न? **कर्म-आहार,...** ये कर्म के रजकण। **लेप-आहार,...** अन्दर चोपड़े **कवल-आहार,...** ग्रास ले। **ओज-आहार...** यह पंखी (पक्षी) जैसे पंक्षी पंख द्वारा बच्चे को पोसता है न? वह ओज आहार

कहलाता है। **मन-आहार...** देवों को मन का आहार होता है। उन्हें हजार वर्ष में इच्छा होती है, उन्हें मन से आहार आता है। यह छह प्रकार आहार है, लो।

अशुद्ध जीवों के विभावधर्म सम्बन्ध में व्यवहारनय का यह (अवतरण की हुई गाथा में) उदाहरण है। आहार लेना, यह विकल्प है, ऐसा अशुद्धभाव है, उसके द्वारा यहाँ बात है। अथवा छह प्रकार का आहार के लिए सब है। **अब, (श्री प्रवचनसार की २२७ वीं गाथा द्वारा) निश्चय का उदाहरण कहा जाता है।** लो यह २२७ गाथा है।

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।
अण्णं भिक्ख-मणेसणमध ते समणा अणाहारा।।

जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है),... क्या कहते हैं ? मुनि को तो आत्मा में आहार है ही नहीं। आहार तो जड़-धूल है। वह आत्मा में है नहीं। यह आत्मा आहाररहित है, ऐसी जो दशा, ऐसा आत्मा का भान, उसे ही एषणा कहा जाता है। वह **एषणारहित है (अर्थात्, जो अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है),...** ऐसा कहते हैं। उसे आहार की इच्छा नहीं है। आहाहा! इच्छा तो राग है।

मुमुक्षु : आत्मा को होवे कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में कैसी वह वस्तु। वह तो विकल्प उठा था, ऐसे जीव की बात की थी। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है।

उसे वह भी तप है;... क्या कहा ? यह आत्मा अनशनस्वभावी है अर्थात् आहार-पानी रहित स्वभाववाला है—ऐसा जो भान वही, एक तप है। भगवान आत्मा में जहाँ विकल्प नहीं, वहाँ ऐसा आहार और पानी उसमें अन्दर है नहीं। आहाहा! ऐसा जो चैतन्यतत्त्व है। कहते हैं, **(अनशनस्वभावी आत्मा को...)** अर्थात्, अशन, अनशन। अशन रहित अनशनस्वभावी ऐसा। अशन अर्थात् आहार-पानी। अनशन अर्थात् आहार-पानी रहित। ऐसे आत्मा को जानता होने के कारण। अरे! मैं तो आहार के रजकण और रागरहित हूँ। आहार के रजकण तो अजीव हैं और राग है, वह तो आस्रवतत्त्व है। मैं तो उस आस्रव और अजीव रजकण से मेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा को अशनरहित

स्वभाववाला जानता हुआ, वही एक तप है, कहते हैं। क्या कहा ? समझ में आया ?

आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सिद्धस्वरूप परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा, देह के रजकणों से भिन्न है, कर्म से भिन्न है। कर्म जड़ है, पुण्य-पाप के विकल्प / आस्रव से भिन्न है तो इस आहार-पानी से भिन्न है, ऐसी जो आत्मा की स्थिति... आहार-पानी कुछ भी स्वरूप में नहीं है, ऐसा मैं हूँ। ऐसा जो ज्ञान-ध्यान, वह तप है। कहा या नहीं ? क्या कहा ? अनशनस्वभावी आत्मा को जानता हुआ। अर्थात् ? अनशनस्वभावी अर्थात् ? अशन, अनशन। अशन-अनशन। अशन—आहार-पानी से रहित अनशन। ऐसा अशनरहित आत्मा। जैसे शरीररहित आत्मा, वैसे आहार-पानीरहित आत्मा, ऐसे आत्मा की अनुभव दृष्टि होने से उसकी स्थिरता अन्तर में है। उसे ही तप कहा जाता है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? विशेष बात लेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)